सूरदास की भक्ति भावना

डॉ. नीरज कुमार द्विवेदी
असि. प्रो., हिन्दी विभाग
दयानन्द वैदिक कॉलेज, उरई

महाकवि सूरदात मध्यकालीन हिन्दी काव्य के सर्वश्रेष्ठ भक्त कवियों में से एक हैं, जिनकी सम्पूर्ण मानसिक प्रक्रिया का आधार उनकी भक्ति–भावना है। भक्ति मध्यकाल में चरम पुरुषार्थ के रूप में मान्य थी और इसे काव्य सत्य के रूप में प्रतिफलित करने का कार्य सूरदास ने एक उत्कृष्ट जीवन दर्शन के माध्यम से किया। यह उनके जीवन का साधनात्मक ध्येय था। उनका समस्त रचना संसार भक्ति के प्रेममूलक भावों से ओतप्रोत है, जिसमें वात्सल्य, सख्य, माधुर्य एवं दाम्पत्य आदि भावों की निष्पत्ति हुई है। उनकी भक्ति भावना के दो आयाम हैं प्रपत्तिमूलक और माधुर्यपरक। प्रथम भक्ति भावना के मूल में निर्वेद भाव की अभिव्यक्ति की गई है। इस का प्रबलतम प्रकाशन यद्यपि केवल विनय के पदों में है परन्तु उसका सूत्र अविच्छिन्न रूप में समस्त काव्य में निरन्तर विद्यमान रहता है। संसार की क्षणभंगुरता से उत्पन्न निर्वेद का भाव सूरदास के मानस का सबसे गहरा और आधार रुप भाव है। भगवान के करुणामय स्वभाव का आश्वासन पाकर सूरदास की वैराग्य भावना जिस भगवत रति के रूप में व्यक्त हुई वह श्री कृष्ण के विविध भावमय व्यक्तित्व के नाते अनेक रूप धारण कर लेती है। सूर के काव्य में दास्य, सख्य एवं वात्सल्य केवल भावमात्र ही नहीं अपितु विभाव और संचारियों से पुष्ट स्थायी भाव होकर रसदशा का अनुभव कराने में सक्षम है।

सूर की भक्ति का मूल आधार उसकी अनन्यता है। यह अनन्यता सूर सागर में आद्योपांत विद्यमान है–

मेरो मन अनन्त कहाँ सुख पावै, जैसे उड़ि जहाज को पंछि पुनि जहाज पर आवै।।

उनकी विनयपरक भक्ति में प्रपत्तिमार्ग के छः नियमों

- प्रपत्ति अथवा अनुकूल होने का संकल्प
- प्रतिकूल का त्याग
- भगवान की रक्षा में विश्वास
- भगवान की भक्त वत्सलता
- समर्पण भाव
- दीनता

का प्रयोग किया गया है। वे अत्यंत विनीत भाव से अपने दैन्य का प्रदर्शन करते हुए मुक्ति की याचना करते हैं –

अब मैं नाच्यौ बहुत गोपाल,
काम क्रोध को पहिरि चोलानों, कंठ विषय की माल,
सूरदास की सबै अविधा दूर करहु नन्दलाल ।

इसी प्रकार सूर की इस भक्ति भावना में वैष्णव सम्प्रदाय को सप्त भूमिकाएं सहज उपलब्ध हैं–

1) दीनता
2) मान मर्षता
3) भय दर्शन
4) भर्त्सना
5) आश्वासन
6) मनोराज्य, और
7) विचारणा

नीरज द्विवेदी

वल्लभाचार्य के सम्पर्क में आने के बाद सूर की भक्तिभावना में आत्मनिवेदन का नव्य आयाम उद्‌घाटित होता है। उसमें कृष्ण लीला के वात्सल्य, सख्य और माधुर्य भावों के माध्यम से आनंद का अभूतपूर्वपल्लवन होता है। सूरदास ने आचार्य वल्लभ के दार्शनिक सिद्धांत शुद्धाद्वैत की काव्यात्मक मीमांसा करते हुए पुष्टि मार्गी सेवा पद्धति का अनुगमन किया है। इस प्रकार सूर की भक्ति के पांच रुप मिलते हैं –

1) साधारण भक्ति विवेचन
2) वैराग्यपूर्ण भक्ति
3) वैधी भक्ति
4) प्रेम रुपा भक्ति
5) पुष्टि मार्गीय भक्ति

मूल रूप से उनकी भक्ति पुष्टिमार्गी प्रेमरूपा भक्ति की अन्तिम परिणति सर्वतो भावेन श्री कृष्ण में भावलीन हो जाने में होती है। उनके श्रीकृष्ण मानव रूप में कल्पित अवश्य हैं पर हैं वे वस्तुतः लोकातीत और मानव भावनाओं से निर्लिप्त। यशोदा के त्यागमय स्नेह सखाओं की निर्लोभ उच्च आत्मीयता और गंभीर ममता गोपियों के सर्वात्म समर्पण और राधा के तादात्म्य भाव की प्राप्ति की विविध भाव दशाओं को निरूपित करते हैं, जो उनकी दृढ़तर भक्तिभावना के परिचायक हैं। भक्ति में आचार–विचार नैतिक मूल्यों व वैराग्यमूलक जीवनदर्शन को वाणी दी है–

छांडि मन हरि विमुखन को संग।
जाके संग कुबुद्धि उपजे, परत भजन में भंग।।

उनकी भक्ति भावना कृष्ण प्रेम से आप्लावित है। उसमें आनंदानुभूति की प्रधानता है –

जो सुख होत गोपालहिं गाये,
सो सुख होत न जप–तप कीन्हे, कोटिक तीरथ नहाये।

भक्ति का पहला आयाम पर आधारित है। इसमें माता यशोदा की आसक्ति का वर्णन किया गया है। दूसरा आयाम सख्य भक्ति का है। यह दो रूपों में प्रकट हुआ है–गोप ग्वालों और कृष्ण प्रसंग में। गोप ग्वाल श्रीकृष्ण के प्रति सख्य भक्ति के अन्यतम उदाहरण हैं। वह श्री कृष्ण के मिलन सुख में विभोर हैं और न कोई उनका भाव कृष्ण से छिपा है, न कृष्ण का कोई चरित्र ही उनके लिए गोप्य है। तीसरा आयाम माधुर्य भाव की भक्ति है। इसके मूल में 'श्रंगार' के दो रूपों में संयोग एव वियोग से संबंधित प्रेमानुभूति है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने 'हिन्दी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास' में आसक्ति के प्रकार भेदों की दृष्टि से सूरसागर की भक्ति को जिन ग्यारह प्रकारों में रखा है, वे नारद भक्ति सूत्र के अनुसार आसक्ति के भेद हैं, जो कि इस प्रकार हैं–

1) गुणमहात्म्यासक्ति (श्रवण, कीर्तन–भ्रमरलीला)
2) रुपासक्ति (वंदन– दान लीला)
3) पूजासक्ति (चरण सेवन अर्चन–गोवर्धन धारण)
4) स्मरणासक्ति (स्मरण– गोपिका वचन)
5) दास्यासक्ति (दास – मुरली स्तुति)
6) सख्यासक्ति (सख्य–गोचारण)
7) कांतासक्ति (सख्य–गोपिका विरह)
8) वात्सल्यासक्ति – यशोदा विलाप
9) आत्मनिवेदनासक्ति

10) तन्मयासक्ति

11) परमविरहासक्ति

आत्मनिवेदनासक्ति, तन्मयासक्ति, परमविरहासक्ति की आत्मनिवेदन की अनुभूति भ्रमरगीत के पदों में है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूरसागर की कथावस्तु में नवधा भक्ति के अंगों की पूर्णतः तुष्टि होती है। जहाँ–जहाँ सूर ने इन प्रसंगों का वर्णन किया है वहां–वहां उनके अंतर्गत उनकी भक्ति भी सन्निहित हो गयी है। एक प्रकार से सूरदास भक्ति के अनेकों प्रकार के उदाहरण है। उनकी भक्ति भावना में काव्य दर्शन, मनोविज्ञान, धर्म संस्कृति के श्रेष्ठ नियामक तत्व घुलेमिले हैं। उनकी भक्ति भावना का मूल स्वर प्रेम एवं सौन्दर्य है। आराध्य श्रीकृष्ण का चरित्र रसिकेश्वर, अनंदघन, लीलावतारी है। उनमें अपरिमित सौन्दर्य विद्यमान है, उनके प्रेम में सभी वशीभूत है। गहन रागात्मक व्यंजना उनके भक्तिभाव को दृढ़ अवस्था प्रदान करती है। इसकी व्यंजना निम्नलिखित उदाहरण में दृष्टव्य है–

ब्रज के विरहि लोग दुखारे,

बिन गोपाल ठगे से ठाढ़े अतिदुर्बल तन कारे।

विरह ही वह स्थिति है जहां प्रेम की पूर्णता लक्षित होती है। डॉ. ब्रिजेश्वर वर्मा का मत है कि सूरदास ने विरह रस को सर्वश्रेष्ठ स्थान देकर गोपियों के माधुर्य में अनन्य निष्काम अविछिन्न प्रेम की काल–सीमा पर पहुँचाकर उसकी सोदाहरण प्रतिष्ठा की है। भक्ति का शुद्ध रूप वियोगावस्था में ही निखरता है, इसलिए सच्चे भक्त सूरदास का वियोग वर्णन अत्यंत उच्च कोटि का बन पड़ा है–

सखी री श्याम सबै इकसार।

मीठे वचन सोहाये बोलत अंतर जारनहार।

डॉ. हरवंश लाल शर्मा ने सूर की भक्ति भावना को चित्रित करते हुए लिखा है कि सूर की भक्ति भावना में भावों की प्रवणता, अनुभूति की तीव्रता, विश्वास की असंदिग्धता का चरमोत्कर्ष है, जिसके कारण उनके पदों में गीत की स्वस्थ आत्मा की प्रतिष्ठा हो सकी है। सूर के विशाल मानस में भाव रस का इतना उद्रेग था कि वह हठात् वाणी के बांध को तोड़ता हुआ फूट पड़ा है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सूर को भक्ति भावना की सहजता की अत्यंत भावात्मक शब्दों में प्रसंशा की है। भगवत् अनुग्रह उनकी भक्ति की केन्द्रीय संवेदना है। उनकी भक्ति में गोपी भाव की प्रधानता है –

भज सखि भाव भाविक देव ।

कोटि साधन करै कोऊ तऊ न माने तेव।।

आत्मा की व्यथा नारी चरित्र के माध्यम से व्यक्त की गयी है। इसका भावात्मक उद्‌घाटन गोपियों की विरह वेदना के प्रकटीकरण से किया गया है–

निरखत नैन भरि आये अरु पंचुकि यह भीजै।

तलफत रहति मीन चातक ज्यों जल बिनु तृषा न छीजै।

वस्तुतः सूर ने भक्ति को साधन और साध्य दोनों सच्चे रूपों में चित्रित किया है। उनकी भक्ति में जीवन के प्रति दृढ़ आस्था एवं अनुराग विद्यमान है। पुष्टिमार्ग में उस पुरुषोत्तम की भक्ति की जाती है जो भक्त में आत्मरूप से निवास करता है। इस अवस्था का विविध भावों से अनुभव एवं उद्‌घाटन सूर की भक्ति भावना की रचनात्मक छाप है।

नीरज द्विवेदी